बाल्यकाल और व्यावहारिक ज्ञान
पारस्परिक संबंध

प्रभा पन्त*

इस लेख में लेखिका द्वारा व्यावहारिक अनुभव के आधार पर 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005' के प्रमुख मार्गदर्शक सिद्धांतों, जैसे— ज्ञान को विद्यालय के बाहरी जीवन से जोड़ना, रटंत प्रणाली से मुक्ति, विद्यार्थियों का स्वतंत्र विकास, पढ़ाई के प्रति विद्यार्थियों की अभिरुचि, अभिभावकों के हितों और समझ का महत्व आदि का प्रतिपादन करने का विनम्र प्रयास किया गया है। इसके साथ ही बच्चों में बाल्यकाल में नैतिकता संबंधी व्यावहारिक ज्ञान के विकास हेतु विद्यालयी शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा तथा व्यावहारिक ज्ञान के पारस्परिक संबंध को मज़बूत बनाने के प्रयासों पर प्रकाश डाला गया है।

माली जब किसी उपवन अथवा गमले में, जंगल के किसी पौधे को आरोपित करता है तो वह उसे जंगल में विकसित होने वाले पौधे की तरह प्रकृति के सहारे नहीं छोड़ता, न ही अन्य मौसमी वृक्ष-लताओं एवं पौधों के समान उसकी देख-रेख करता है; वरन् माली उसे प्रकृति के अनुरूप परिवेश प्रदान करता है। समुचित मात्रा में खाद-पानी देने के साथ ही कीटनाशक का छिड़काव करता है, उसके आस-पास उगने वाले खरपतवारों को उखाड़ फेंकता है तथा जानवरों से उसकी रक्षा भी करता है। जैसे-जैसे वह पौधा विकसित होने लगता है तो माली उसे बेतरतीब नहीं बढ़ने देता; बल्कि काट-छाँटकर उसे आकर्षक रूप व आकार प्रदान करना भी प्रारंभ कर देता है। विपरीत परिस्थितियाँ उसके विकास में बाधक न बनें, इसके लिए वह अनेक उपाय करता है, ताकि भविष्य में वह पौधा स्वस्थ-पुष्ट एवं आकर्षक वृक्ष बन सके। इसी तरह माता-पिता तथा शिक्षकों का कर्तव्य है कि वे बालक/बालिकाओं को ज्ञानार्जन हेतु पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करते हुए, सीखने के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करके, उन्हें समुचित परिवेश एवं वातावरण प्रदान कर सीखने के लिए प्रेरित करते रहें।

प्रत्येक बालक में ज्ञान के स्वतः विकास की शक्ति विद्यमान होती है। अतः शिक्षण विधि के अंतर्गत शिक्षा का कार्य एक सहायक का है, जिस प्रकार किसी वृक्ष या पौधे के लघु से लघुतर बीज के अंतस् में विकास-तत्व विद्यमान होते हैं; उसी प्रकार प्रत्येक बच्चे में भी जन्मजात कुछ ऐसे विशिष्ट गुण

**प्रोफ़ेसर* एवं *विभागाध्यक्ष*, हिंदी विभाग, मोतीराम बाबूराम राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड 263 139

© NCERT not to be republished

विद्यमान होते हैं जो विकसित होकर उसे विशेष पहचान प्रदान करते हैं। ऐसा तभी संभव होता है, जब माता-पिता, अभिभावकों तथा शिक्षकों द्वारा बाल मनोविज्ञान को समझकर, बच्चों को उनके व्यक्तिगत भेद के आधार पर, उनके बुद्धि स्तर एवं क्षमता का ध्यान रखते हुए, उनके प्रति व्यवहार किया जाता है। गुड एन.एफ़ के अनुसार, "व्यक्ति का जितना भी मानसिक विकास होता है, उसका आधा तीन वर्ष की आयु तक हो जाता है।"

बच्चे स्वभावतः अनुकरणशील होते हैं; अतः आवश्यक है कि बाल्यावस्था में बच्चे को घर-परिवार तथा विद्यालय में ऐसा वातावरण एवं परिवेश प्रदान किया जाए, जहाँ उसे किसी के व्यवहार में जाति, धर्म तथा वर्गगत भेदभाव न दिखाई दे। व्यावहारिक ज्ञान से तात्पर्य है— वह बातें जो पुस्तकों में कही गई हैं अथवा जो कुछ हम बच्चों को सिखाते हैं, उनसे करने के लिए कहते हैं, उसे अपने व्यवहार में भी क्रियान्वित करें। व्यक्ति जब तक अज्ञानता की स्थिति में रहता है, तब तक वह उचित-अनुचित में वास्तविक भेद नहीं कर पाता। यदि उसे नैतिकता का ज्ञान हो जाता है तो वह स्वयं अनैतिक तथा पाशविक प्रवृत्तियों से मुक्त होने का प्रयत्न करने लगता है; क्योंकि नैतिकता वह मानवीय भाव एवं सामाजिक तत्व है जो व्यक्ति को कोई कार्य करने या न करने की आज्ञा देता है।

नैतिकता का तात्पर्य नियमों की उस व्यवस्था से है, जिसके द्वारा व्यक्ति का अंतःकरण अच्छे व बुरे का बोध प्राप्त करता है। अपने कार्य के दौरान मुझे यह अनुभव हुआ कि सामान्यतः कोई भी व्यक्ति जानबूझकर अनुचित कार्य नहीं करता। मैंने पाया कि अधिकांशतः लोग वही कार्य करते हैं, जिसे वे उचित समझते हैं अथवा उनकी दृष्टि में जो उचित है अर्थात् जब तक व्यक्ति आत्मदृष्टि विकसित नहीं कर लेता, तब तक वह अपने पारिवारिक एवं सामाजिक संस्कारों के वषीभूत ही व्यवहार एवं कार्य करता है। *एन.सी.एफ. 2005* में स्पष्टतः कहा गया है कि हाशिए के समाजों के बच्चों को, जिन्हें अपने पारिवारिक परिवेश से जुड़े कार्य-कौशल का ज्ञान होता है, कक्षा अथवा विद्यालय में कराई जानी वाली गतिविधियों के माध्यम से अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करें। इससे उन्हें अपने संपन्न परिवार के साथियों से मान-सम्मान पाने का अवसर प्राप्त होगा और उनके आत्मविश्वास में भी वृद्धि होगी।

इसके अतिरिक्त बाल्यकाल में नैतिकता संबंधी व्यावहारिक ज्ञान के लिए आवश्यक है कि शिक्षकों एवं परिवारजनों के व्यवहार में नैतिक मूल्यों का समावेश हो। विन्सेन्ट और मार्टिन का विचार है, "बाल्यावस्था में ही नैतिक व्यवहार की आधारशिलाओं का प्रारंभ हो जाता है। आगे चलकर बालक के नैतिक व्यवहार के विकास का निर्देशन यही आधारशिलाएँ करती हैं।" बच्चे की प्रथम पाठशाला घर है, इसके पश्चात् वह विद्यालय में प्रवेश लेता है। घर में बच्चों के प्रति जो दायित्व माता-पिता का है, विद्यालय में वही दायित्व अध्यापकों का भी है। इसके लिए आवश्यक नहीं है कि नैतिक शिक्षा हेतु विद्यालय में किसी अध्यापक विशेष की नियुक्ति की जाए, किंतु यह नितांत आवश्यक है कि प्रत्येक अध्यापक अपने

© NCERT not to be republished

व्यवहार एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक होने के साथ ही संवेदनशील भी हो। इन गुणों के अभाव में वह योग्यतम व्यक्ति होने पर भी अपने दायित्व निर्वहन में पूर्णतः सफल नहीं हो सकेगा।

रॉस (1931) ने तो स्पष्टतः कहा है कि, "जो व्यक्ति सहानुभूति के गुण से वंचित है, उसे शिक्षक नहीं बनना चाहिए। शिक्षक के लिए सहानुभूति वह साधन है, जिससे वह बच्चों को एक-दूसरे के निकट संपर्क में लाकर, उनमें सामाजिक गुणों का विकास कर सकता है।" एक अध्यापक के लिए आवश्यक है कि अध्यापन उसके लिए धनोपार्जन का माध्यम मात्र न हो, वरन् वह इसे व्यक्ति एवं आदर्श समाज के निर्माण तथा राष्ट्रसेवा का माध्यम भी मानता हो। "बच्चों को पर्यावरण व पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशील बनाना भी पाठ्यचर्या का एक महत्वपूर्ण सरोकार है।" एक शिक्षक अध्यापन के मध्य विद्यार्थियों को इसकी व्यावहारिक जानकारी प्रदान करते हुए, उन्हें क्रियान्वित करने के लिए सहज ही प्रेरित कर सकता है। आधुनिक शिक्षाशास्त्रियों ने बिना किसी मतभेद के इस बात को स्वीकार किया है कि विद्यार्थियों में अध्ययन की उत्तम एवं प्रभावशाली आदतों का विकास करना, एक शिक्षक का प्रमुख कर्तव्य है।

किसी भी विषय को पढ़ाते समय अध्यापक यदा-कदा ऐसे अवसर एवं परिस्थितियाँ सृजित कर सकते हैं, जिनमें विद्यार्थियों को कृत्रिमता का बोध न हो और नैतिकता का कोई न कोई संदेश भी उनके मनोमस्तिष्क पर अंकित हो जाए। ऐसा तभी संभव है, जबकि शैक्षणिक कार्य आजीविका का साधन तो बने, किंतु उसे व्यवसाय न समझा जाए। वर्तमान काल में, शिक्षा-संस्थान व्यावसायिक केंद्र स्थल बनते जा रहे हैं; इस कारण गुरु-शिष्य परंपरा के उच्च आदर्श लुप्त होने लगे हैं। शिक्षक और विद्यार्थी के मध्य बढ़ती दूरी के संबंध में जो बात बी. कुप्पूस्वामी ने 1976 में कही थी, वह आज भी सत्य प्रतीत होती है, "जब बालक निम्नवर्ग से संबंधित होते हैं तो बालकों और अध्यापकों के मूल्य में खाई होती है। ऐसा बालक या तो शिक्षकों की आज्ञा का पालन नहीं करता या आक्रामक रवैया अपनाता है या उदासीन हो जाता है अथवा कक्षा में अनुपस्थित रहता है। ऐसे विद्यार्थी धीमी गति से सीखते हैं, इसलिए अध्यापक उनसे ऊब जाते हैं या उनसे निराश हो जाते हैं। इस प्रकार अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही एक-दूसरे को स्वीकार नहीं करते।"

नैतिकता ही मानव को पूर्णता प्रदान करती है। अतएव अर्थशास्त्र, भूगोल, गणित, भौतिकी आदि विषयों के साथ ही बालक-बालिकाओं को नैतिकता का भी ज्ञान देना आवश्यक है। नैतिकता के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वहन समुचित रूप में नहीं कर सकता है। इसका ज्ञान जीवन में उतना ही अपरिहार्य है, जितना कि जीवित रहने के लिए श्वास लेने के साथ, खाना-पीना आदि। जब व्यक्ति को नैतिक कर्तव्यों का ज्ञान हो जाता है, तो उसके व्यवहार में लोकतंत्र, समानता, न्याय, स्वतंत्रता, परोपकार, धर्मनिरपेक्षता, मानवीय गरिमा व अधिकार तथा दूसरे के प्रति आदर जैसे मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता स्वतः परिलक्षित हो उठती

© NCERT not to be republished

है। अतः नैतिक शिक्षा हेतु सैद्धांतिक ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान अधिक महत्वपूर्ण है।

हम प्रायः बच्चों को सैद्धांतिक एवं अधूरा ज्ञान देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वह उसका सदुपयोग नहीं कर पाते हैं, जैसे— सैद्धांतिक रूप में हम उन्हें सत्य बोलने की शिक्षा तो देते हैं, किंतु व्यावहारिक रूप में अनेक बार उन्हें असत्य बोलने का आदेश देते हैं अथवा उनके समक्ष स्वयं ही असत्य बोलते हैं। इस स्थिति में बच्चों का निश्छल मन यह समझ ही नहीं पाता, ऐसा क्यों? इतना ही नहीं, कभी-कभी तो बच्चों को सत्य बोलने पर माता-पिता का कोपभाजन भी बनना पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि पड़ोसी के कुछ माँगने पर हम बच्चे के सामने कह देते हैं, 'नहीं है' तो इस स्थिति में उसे लगता है कि शायद माँ अथवा पिताजी भूल गए हैं और वह शाबाशी पाने की आशा में उत्साहित होकर कह देता है, 'अमुक वस्तु तो है, मैं लेकर आता हूँ' या फिर वह बिना कुछ कहे भीतर जाता है और पड़ोसी की इच्छित वस्तु उठाकर ले आता है तथा भोलेपन से कहता है— 'माँ आप भूल गई हैं, देखिए, यह है।' तब अपनी झेंप मिटाते हुए हम उस व्यक्ति के सामने तो बच्चे को शाबाशी देते हैं और उसकी स्मरणशक्ति की प्रशंसा करते हुए, पड़ोसी को उसकी अपेक्षित वस्तु दे भी देते हैं; किंतु उसके जाने के बाद बच्चे को खूब फटकारते हैं। तब बाल मस्तिष्क अंतर्द्वन्द्व में उलझ जाता है। वह समझ ही नहीं पाता है कि जिस कार्य के लिए थोड़ी देर पहले उसकी प्रशंसा की गई थी, उसी कार्य के लिए अब उसे फटकारा क्यों जा रहा है अथवा 'मैंने तो सच बोला था, फिर मुझे डाटा क्यों गया'? "बच्चे अपने आस-पास की दुनिया से बहुत ही सक्रिय रूप से जुड़े रहते हैं। वे खोज-बीन करते हैं, प्रतिक्रिया करते हैं, चीज़ों के साथ कार्य करते हैं, चीज़ें बनाते हैं और अर्थ गढ़ते हैं। बचपन विकास और निरंतर बदलाव की अवस्था है जिसमें शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का पूर्ण विकास शामिल होता है। इस विकास में वयस्क समाज में समाजीकृत होना भी शामिल है, जिसमें बच्चा संसार का ज्ञान ग्रहण करता है और नए ज्ञान का सृजन भी करता है। बच्चा स्वयं को दूसरों से जोड़ कर देखना सीखता है जिससे उसकी समझ बनती है, वह कार्य कर पाता है और रूपांतरण कर पाता है।" *(एन.सी.एफ़. 2005)*

अभिभावकों एवं शिक्षकों के इस तरह के दोहरे व्यवहार से बच्चे के कोमल मन पर तीव्र आघात पहुँचता है; अतएव दोनों का दायित्व है कि वे अपनी कथनी-करनी में भेद न करें। यदि किसी अपरिहार्य कारणवश उन्हें ऐसा कोई कार्य करना पड़ रहा है तो बच्चे को उसके व्यावहारिक पक्ष को भी समझाएँ, जिससे कि भविष्य में वह उचित-अनुचित तथा सत्य-असत्य का विवेकपूर्ण निर्णय ले सके। इससे बच्चे को मानसिक अंतर्द्वन्द्व से भी नहीं जूझना पड़ेगा और न ही उनका कोमल मन कुण्ठाग्रस्त होगा। हम बच्चों को अधिकांशतः सैद्धांतिक ज्ञान ही देते हैं; परिणामस्वरूप भावी जीवन में उन्हें अनेक जटिलताओं का सामना करना पड़ता है; अतः प्रत्येक आयु वर्ग के बच्चों के लिए व्यावहारिक ज्ञान परम आवश्यक है। व्यावहारिक ज्ञान के अभाव में बच्चे पुस्तकीय ज्ञान को अंक-प्राप्ति, कक्षा-उन्नति तथा डिग्री एवं

© NCERT not to be republished

नौकरी-प्राप्ति का साधन मात्र मानकर, रटंत प्रणाली के माध्यम से परीक्षा उत्तीर्ण करके अगली कक्षा में प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं, "यांत्रिक तरीके से परखे जाने के लिए सीखने की प्रक्रिया बच्चे से बच्चा होने का सुख छीन लेती है तथा स्कूली जानकारी को प्रतिदिन के अनुभव से अलग कर देती है।" इस गहन संरचनात्मक समस्या से निपटने के लिए, *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* में, 'लर्निंग विदाउट बर्डन' की अंतर्दृष्टि व सिफ़ारिशों की सहायता ली गई है व उनका विस्तार भी किया गया है।

यदि हम बाल्यकाल से ही उन्हें सिखाएँ कि किस प्रकार पुस्तकीय ज्ञान को हम व्यावहारिक रूप में जीवन का अंग बना सकते हैं, तब शिक्षा न तो उन्हें बोझिल लगेगी और न ऊबाऊ; वरन् रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होने लगेगी। इसके लिए पालन-पोषण के साथ ही "अध्यापन को बच्चे के रचनात्मक स्वभाव के सदुपयोग का माध्यम बनाने" *(एन.सी.एफ़. 2005)* का प्रयास करना नितांत आवश्यक है। हम बच्चों को कहानियों एवं किस्सों के माध्यम से भी यह समझाने का प्रयास कर सकते हैं कि शिक्षा केवल अंक प्राप्त करके, अगली कक्षा में पहुँचने, धनोपार्जन करने अथवा भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने का ही माध्यम नहीं है; बल्कि इसके द्वारा हम पाशविक प्रवृत्तियों से मुक्त होकर मानवीय गुणों से युक्त होते हैं। जीवनोपयोगी शिक्षा वही है जो "उन मूल्यों को प्रसारित करने में सक्षम हो जो शांति, मानवता और सांस्कृतिक-विविधता वाले समाज में सहिष्णुता को पोषित करें।" *(एन.सी.एफ़. 2005)*

इस प्रकार यदि माता-पिता तथा अध्यापक मिल-जुलकर अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करेंगे, तो निश्चय ही हमारे बच्चे भविष्य में देश को सुदृढ़ और समुन्नत बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम बनेंगे। मार-पीटकर अथवा दण्डित करके बच्चे के स्वभाव एवं उसके व्यवहार को परिवर्तित नहीं किया जा सकता; अधिकांशतः इसके विपरीत परिणाम ही सामने आते हैं। इस स्थिति में कभी-कभी बच्चा माता-पिता तथा गुरुजनों आदि के समक्ष तो अनैतिक अथवा अनुशासनहीन कार्य नहीं करता, किंतु उनकी अनुपस्थिति में उन कार्यों को अवश्य करता है, जिन्हें करने से उसे रोका जाता है। जिज्ञासा मानव की जन्मजात प्रवृत्ति है। इसके वशीभूत भी बच्चे कुछ ऐसे क्रियाकलाप करते दिखाई देते हैं जो पारंपरिक सोच के अभिभावकों एवं शिक्षकों, दोनों की दृष्टि में समय को व्यर्थ गंवाना हो सकता है; जबकि वास्तव में ऐसे ऊर्जावान बच्चों को उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है; क्योंकि आविष्कार तथा अन्वेषणादि जिज्ञासु स्वभाव का ही सुपरिणाम हैं। इसके अतिरिक्त बच्चे उसी वातावरण में सीख सकते हैं, जहाँ उन्हें लगे कि उन्हें महत्वपूर्ण माना जा रहा है *(एन.सी.एफ़. 2005)*। अपने आस-पास के सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से और विभिन्न कार्यों से जुड़ने की क्षमता बढ़ती है, इसके लिए ऐसे मौकों का मिलना बहुत ज़रूरी है जिससे विद्यार्थी नयी चीज़ों को आज़माएँ, जोड़-तोड़ करें, गलतियाँ करें और अपनी गलतियाँ खुद सुधारें।" *(एन.सी.एफ़. 2005)*

© NCERT not to be republished

अतः हमारा दायित्व है कि जब भी हम बच्चे को कोई कार्य करने से रोकें अथवा उसकी किसी माँग को पूरा करने में असमर्थ हों, तो उसे इसका कारण अवश्य बता दें। अधिकांश माता-पिता अथवा अभिभावक बच्चे के ज़िद करने पर या तो कोई बहाना बना देते हैं या बात को दूसरे दिन के लिए टाल देते हैं और कभी-कभी वे बच्चे के रोने-बिलखने पर थक-हारकर उसकी उचित-अनुचित माँग को पूरा भी कर देते हैं। इससे अनजाने ही वे बच्चे में नकारात्मक सोच का बीजारोपण करते हैं। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे बच्चे में ऐसी अनेक दुश्वृत्तियाँ जन्म लेने लगती हैं, जो भविष्य में उसके साथ ही समाज के लिए भी घातक सिद्ध होती हैं। बाल-मनोविज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि प्रत्येक बच्चे का बुद्धि स्तर एक-दूसरे से भिन्न होता है। अतः यदि हम व्यावहारिक मनोविज्ञान को आधार बनाकर बच्चों की पारस्परिक भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए, उनकी मानसिक आयु के आधार पर उन्हें अनुशासन, नैतिकता, प्राणीमात्र से प्रेम, स्वाध्याय तथा राष्ट्रचेतना आदि के विषय में ज्ञान देंगे तो निःसंदेह हमें सफलता प्राप्त होगी।

प्रत्येक बालक-बालिका में अपनी कुछ विशेषताएँ तथा कुछ कमियाँ विद्यमान होती हैं। माता-पिता एवं शिक्षकों का कर्तव्य है कि हम विद्यार्थियों को उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं से परिचित कराएँ, न कि उनके अभाव पक्ष को उजागर करते हुए बात-बात पर अन्य बच्चों से उनकी तुलना करके उलाहना दें। हमारे सकारात्मक व्यवहार से जहाँ एक ओर बच्चे का आत्मविश्वास जाग्रत होगा और उसके मनोबल में वृद्धि होगी, वहीं दूसरी ओर बच्चों में परस्पर प्रेम व सम्मान भाव में भी अभिवृद्धि होगी। हमें उन्हें यह भी बताना चाहिए कि किसी महान, सफल अथवा श्रेष्ठ व्यक्ति का गुणगान या प्रशंसा करने से भी श्रेयस्कर है कि हम उनका अनुकरण करें; यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो यह किसी व्यक्ति की निंदा करने में समय व्यर्थ गँवाने के समान ही है।

यदि बाल्यकाल से ही हम बच्चों में आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति का बीजारोपण कर देंगे तो इससे वे दूसरों में दोष ढूँढ़ने के बदले यह सोचने लगेंगे कि कहीं मुझमें भी यह दोष तो नहीं है। इस अभ्यास के लिए हमें उन्हें बताना होगा कि जब एक-एक कर अच्छी आदतों को हम अपने जीवन में उतारते जाते हैं तो खराब आदतें स्वतः ही हमारे जीवन से दूर होती चली जाती हैं और इस प्रक्रिया द्वारा एक दिन हम भी वैसे ही बन जाते हैं, जिन्हें आज हम महान् विभूति मानते हैं। आत्म-मूल्यांकन तथा आत्म-विश्लेषण की प्रवृत्ति बच्चों में सकारात्मक सोच को जन्म देती है; इसलिए यह नितांत आवश्यक है कि बाल्यकाल से ही बच्चों को सैद्धांतिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान भी प्रदान किया जाए, जिससे कि हमारे राष्ट्र का भावी स्वरूप वैसा ही हो जैसी परिकल्पना हम वर्तमान में करते हैं।

© NCERT not to be republished

संदर्भ

गुड, एन. एफ. *मैनुअल ऑफ़ चाइल्ड साइकॉलोजी*. पृ. 467–468.

माथुर, एस.एस. 2014. *बाल-मनोविज्ञान*. राधा पब्लिकेशन, आगरा.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.

रॉस, जेम्स एस. 1931. *ग्राउण्ड वर्क ऑफ़ एजुकेशनल साइकोलॉजी*. जी. जी. हार्प एंड कंपनी लिमिटेड.

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय. *बाल-भारती पत्रिका*. भारत सरकार.

© NCERT not to be republished